ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

क्रमबद्धपर्याय प्रवचन

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत
श्रीसमयसार परमागम की गाथा ३०८ से ३११ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. १९७९ के वर्ष के प्रवचन

आषाढ़ कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक-२१-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-१

अब आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं:—

यह गाथा जो है, वह मोक्ष अधिकार की चूलिका है। यह शुरुआत की गाथा जो है, वह मोक्ष अधिकार पूरा हुआ, उस मोक्ष अधिकार की चूलिका है। ३२१ गाथा में समयसार... पूरे समयसार की चूलिका है। 'चूलिका' का अर्थ यह है कि जो कथन आ गया, वह भी है; नहीं आया, वह भी है, (और) विशेष स्पष्टीकरण करना, उसका नाम चूलिका है। तो यह गाथा मोक्ष अधिकार की... मोक्ष अधिकार पहले आ गया है न? उसकी चूलिका है। संस्कृत टीका में सब है।

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह।।३०८।।

जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते।
तं जीव-मजीवं वा तेहि-मणण्णं वियाणाहि।।३०९।।

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो आदा।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि।।३१०।।

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसदे अण्णा।।३११।।

जो द्रव्य उपजे जिन गुणों से, उनसे जान अनन्य वो।
है जगत में कटकादि, पर्यायों से कनक अनन्य ज्यों।।३०८।।

जीव-अजीव के परिणाम जो, शास्त्रोंविषैं जिनवर कहे।
वे जीव और अजीव जान, अनन्य उन परिणाम से।।३०९।।

उपजै न आत्मा कोइसे, इससे न आत्मा कार्य है।
उपजावता नहिं कोइको, इससे न कारण भी बने।।३१०।।

रे! कर्म-आश्रित होय कर्ता, कर्म भी करतार के।
आश्रित हुवे उपजे नियम से, अन्य नहिं सिद्धी दिखै।।३११।।

गुण शब्द से पर्याय लेना।

टीका—सूक्ष्म बात है। यह तो मोक्ष अधिकार की चूलिका है। उसमें (-शास्त्र में) न आया हो, ऐसा विशेष भी यहाँ लेना, उसका नाम चूलिका है। कहते हैं, प्रथम तो यह कहना है कि... प्रथम अर्थात् '**तावत्**' शब्द पड़ा है संस्कृत में। '**तावत्**' मुख्य बात तो यह कहना है कि... सूक्ष्म बात है। **जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... जीव क्रमबद्ध...** एक के बाद एक परिणाम, जो क्रमबद्ध होते हैं (अर्थात्) आगे-पीछे नहीं और पर से नहीं। आहाहा! यह क्रमबद्ध का बड़ा झगड़ा है न। ऐसा क्रमबद्ध जो हो तो पुरुषार्थ कहाँ रहा। एक के बाद एक पर्याय जब क्रमबद्ध होगी... है तो ऐसा ही। जीव में क्रमसर... क्रमवर्ती कहा है, (उसे) यहाँ क्रमनियमित—क्रमबद्ध कहा है। जिस जीव को जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह क्रमबद्ध अर्थात् क्रम में आनेवाली है, वो आती है और उस पर्याय का स्वकाल ही यह है, जन्मक्षण यह है। जीव में जिस समय जो पर्याय होगी, जो पर्याय हो, आगे-पीछे कोई नहीं। क्रमबद्ध की बड़ी चर्चा हुई थी (संवत्) १३ के वर्ष में। क्रमबद्ध का ऐसा अर्थ किया कि एक पीछे होगी, परन्तु इसके पीछे यही (होगी), ऐसा नहीं। कहा, एक के बाद एक हो, वही हो, उसका नाम क्रमबद्ध है। १३ के वर्ष में बड़ी चर्चा हुई थी, ईसरी में। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

यह जीव—आत्मा जो है, उसकी पर्याय-अवस्था क्रमबद्ध-क्रमनियम (अर्थात्) जिस समय में जो पर्याय होनी है, वह होगी, पीछे (-बाद में) जो होनेवाली (है, वह बाद में) होगी, पीछे (-बाद में) जो होनेवाली (है वह बाद में) होगी—ऐसे क्रमसर होती है। आगे-पीछे करने की ताकत इन्द्र और नरेन्द्र की भी नहीं है। आहाहा! परन्तु वह क्रमबद्ध का तात्पर्य क्या है, वह कहते हैं, देखो। पहले कहा न? **आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं।** ऊपर, गाथा के ऊपर। अकर्तृत्व... क्रमबद्ध में अकर्तृत्व सिद्ध करना है। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! प्रत्येक जीव की पर्याय जिस समय होनेवाली है, उसी समय होगी, आगे-पीछे करने की ताकत इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र की भी नहीं है और पर से तो होती नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यह कहते हैं, अकर्तापना सिद्ध करने को क्रमबद्ध की बात कहते हैं। क्रमबद्ध कहने को अकर्ता (कहते हैं) और अकर्तापना सिद्ध करने को क्रमबद्ध कहते हैं। आहाहा!

पत्र आया था किसी का कि १४वीं, ३८वीं, ७३वीं गाथा (लो)। परन्तु यह (गाथा) लेने की आवश्यकता थी। वह तो चली है १९बार। १९वीं बार यह (समयसार) चलता है। दो गाथा तो १९ बार चल गयी है। पर यह शिक्षण शिविर है तो यह गाथा (लेने का विकल्प आया)। बहुत कठिन है। आहाहा!

जीव की जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। भगवान देखते हैं तो होगी, ऐसा भी नहीं। भगवान तो ज्ञायक हैं, वे तो सर्वज्ञ हैं। वे तो, होती है उसको जानते हैं और होनेवाली पर्याय प्रत्येक जीव में—निगोद से लेकर सिद्ध सबमें... आहाहा! जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह क्रमसर—क्रमबद्ध—नियमसर उत्पन्न होगी। तो उसका तात्पर्य क्या है?

प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... जीव अपने परिणामें से... अपने क्रमसर परिणामों से उत्पन्न होता है। है? **होता हुआ जीव ही है...** ये परिणाम पर से तो होते नहीं और अपने परिणाम से पर में कुछ होता नहीं और अपने परिणाम भी क्रमबद्ध—एक के बाद एक होनेवाले हैं, वे ही होंगे। आहाहा! पर्याय क्रमबद्ध है (अर्थात् होनेवाली) होगी, तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? वह कहा है। इसमें अकर्तापना

सिद्ध करना है। आहाहा! अकर्तापना भी नास्ति से बात है, बाकी वास्तव में ज्ञाता सिद्ध करना है। पण्डितजी! आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवत्! तेरी चीज़ ऐसी है। लोगों ने अपना पक्ष छोड़कर सुनी नहीं कभी (कि) सत्य क्या है। आहाहा!

क्रमबद्धपर्याय होती है, तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? तो कहते हैं कि क्रमबद्ध में अकर्तापने का पुरुषार्थ है। जिस समय में जो पर्याय (होनेवाली है, वह) होगी, उसका जब निर्णय करते हैं, तब ज्ञायक पर दृष्टि जाती है। ज्ञायक पर दृष्टि होने से राग का... सूक्ष्म बात है। वास्तव में तो यह पर्याय का भी कर्ता नहीं। इतनी सब बात यहाँ नहीं ली। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, उसका निर्णय कब होता है? कि उसका मैं अकर्ता हूँ, (ऐसा निर्णय हो)। अकर्तापने का निर्णय कब होता है? कि अपने ज्ञायकभाव पर नजर पड़े, अपने ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि हो, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। ज्ञायकस्वभाव पर (दृष्टि करने से) अकर्तापने का पुरुषार्थ आया। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

(समयसार) ७२ गाथा में तो 'भगवान' कहकर बुलाते हैं आचार्य। 'भगवान आत्मा' ऐसा कहते हैं। ७२ गाथा में है। प्रभु! पुण्य और पाप अशुचि है, मैल है। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का भाव भी मैल है। 'भगवान आत्मा' ऐसा शब्द है। संस्कृत टीका ७२ (गाथा)। भगवान आत्मा निर्मलानन्द ज्ञाता-दृष्टा है, आहा! निर्मल है। पुण्य और पाप अशुचि और मैल है। क्रमसर परिणाम होता है तो भी जो पुण्य-पापरूप परिणाम होता है, वह है तो दुःखरूप और मैल। आहाहा! ज्ञानी को भी अपना आत्मा राग और पर का अकर्ता है, ऐसी बुद्धि जब होती है, तब उसकी बुद्धि द्रव्य पर जाती है। समझ में आया? द्रव्य ज्ञायक है तो ज्ञायक पर दृष्टि होने से ज्ञाता-दृष्टा का निर्णय क्रमबद्ध में होता है। इसका—अकर्तापने का निर्णय ज्ञाता-दृष्टापने में होता है। आहाहा! समझ में आया?

तो कोई ऐसा कहे, केवली को देखा ऐसा होगा, हम क्या करें? समझ में आया? पर्याय क्रमबद्ध होगी, भगवान ने देखा, वैसा होगा, तो हम क्या कर सकते हैं? यह प्रश्न हमारे ७२ के वर्ष में उठा था। संवत् १९७२। कितने वर्ष हुए? ६३ वर्ष। ६० और ३ वर्ष

पहले। उसमें थे न? सम्प्रदाय में थे न पहले? यह प्रश्न ७२ के वर्ष में उठा था। बड़ा प्रश्न चला। दो वर्ष हम नहीं बोले। ७० में दीक्षा और ७२ में यह बात चली। दो वर्ष की दीक्षा थी। उस समय यह कहते थे कि केवली ने देखा वैसा होगा, अपने क्या करे? तो कहा, सुनो! केवली ने देखा वैसा होगा, तो पहले केवलज्ञानी इस जगत में हैं... ज्ञान की एक पर्याय तीन काल—तीन लोक जानती है—ऐसी एक समय की पर्याय जगत में है—सत्ता है, उसका स्वीकार है? समझ में आया?

सेठ! सूक्ष्म बात है। तुम्हारे पैसे-पैसे में यह बात है नहीं कहीं। आहाहा! ६३ वर्ष पहले। छोटी उम्र थी। चर्चा चली थी हमारे सम्प्रदाय में। हमारे गुरुभाई बहुत कहते थे, क्या करें भैया? भगवान ने देखा वैसा होगा, हम क्या पुरुषार्थ करें? (मैंने कहा), सुनो! भगवान ने देखा वैसा होगा, तो भगवान हैं ऐसा पहले निर्णय है (तुमको)? बाद में, देखा ऐसा होगा, यह (बात) तो बाद में। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जगत में हैं, जिसकी ज्ञान की एक पर्याय में तीन काल—तीन लोक को (कुछ) किये बिना,अपनी पर्याय में जानते हैं—ऐसी जगत में सत्ता है, जगत में ऐसी (सत्ता है कि) ज्ञान की एक पर्याय में तीन काल—तीन लोक देखे। अरे! अपने द्रव्य-गुण-पर्याय त्रिकाल देखे, अपनी तीन काल की पर्याय और उसमें दूसरे की अनन्त तीन काल की पर्याय और छह द्रव्य—सब (देखे)। आहाहा! एक समय की ज्ञानपर्याय में ऐसा दिखे, ऐसी ज्ञानपर्याय की जगत में सत्ता है? देखा ऐसा होगा, वह बाद की बात है। समझ में आया?

बहुत छोटी उम्र की बात है। आहाहा! २५ वर्ष की उम्र थी। अभी तो ९० (वर्ष) हुए। २५ वर्ष की उम्र में—जवान अवस्था में यह बात बहुत चली थी। सम्प्रदाय में हमारे गुरु थे, बहुत शान्त थे। सम्प्रदाय में थे शान्त... शान्त... कषाय मन्द। एकदम विरोध न करे। पहले तो हम बात कहें वो सुने ..... भगवान ने देखा, (ऐसा होगा), परन्तु भगवान जगत में हैं, ऐसी सत्ता का स्वीकार कब होगा? कि केवलज्ञान की पर्याय दूसरे में है और जगत में है—ऐसा स्वीकार अपनी पर्याय में कब होगा? कि अपनी पर्याय... जहाँ सर्वज्ञस्वभाव अन्दर पड़ा है, उस पर नजर जायेगी, तब केवलज्ञान की

पर्याय की सत्ता का स्वीकार यथार्थ होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह अधिकार क्यों लिया? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? प्रभु! तेरी बात तो अलौकिक है, परन्तु समझ में.... आहाहा!

भगवान परमात्मा अनन्त सिद्ध हैं और महाविदेहक्षेत्र में संख्यात केवली हैं और २० तीर्थंकर हैं। आहाहा! सब केवलज्ञानी परमात्मा ने देखा, ऐसा होगा। ऐसे अनन्त सिद्ध, केवली और तीर्थंकर केवली एक समय के केवलज्ञान में तीन काल—तीन लोक को देखें, ऐसा होगा, आगे-पीछे नहीं। ऐसा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है। स्वामी कार्तिक में ३२१-२२ गाथा में। भगवान ने देखा ऐसा होगा, इसके अतिरिक्त कभी आगे-पीछे नहीं होगा, ऐसा समकिती मानता है। उससे विरुद्ध माने, वह मिथ्यादृष्टि है—ऐसा लिखा है। आहाहा! ऐसे-ऐसे हम सामायिक कर लें, प्रौषध कर लें, धर्म कर लें, मन्दिर बना दें—उससे धर्म-बर्म कोई है नहीं। आहाहा! लाखों-करोड़ों रुपये खर्चे उसमें धर्म है, लाखों मन्दिर बना ले तो धर्म है—ऐसी बात है नहीं। वो तो जगत की चीज़ है। उसके कारण से बननेवाली है तो बनती है। वह अभी आयेगा। उसका कर्ता आत्मा है नहीं। आत्मा उसका कर्ता नहीं, परन्तु उसका—मन्दिर (बनाने का), पूजा का भाव आया, तो यह शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। आता है, परन्तु वह धर्म नहीं, पुण्य है। समझ में आया? आता है। शुभभाव धर्मी-समकिती, मुनि को भी आता है, परन्तु वे जानते हैं कि यह राग है, हेय है। यह मेरी चीज़ नहीं। राग है, वह दुःखरूप है और भगवान (आत्मा) अतीन्द्रिय आनन्दमय है—उसका जब निर्णय आता है... पर्याय में आनन्द कब आता है? भगवान को ज्ञान की पर्याय के साथ में आनन्द है। पर्याय में निर्णय करे तो आनन्द का स्वाद आना चाहिए। कैसे आता है? आहाहा! (जब) इस पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। क्योंकि पर्याय में पर्याय का निर्णय पर्याय के आश्रय से नहीं होता। केवली का निर्णय भी पर्याय के आश्रय से नहीं होता और अपनी पर्याय का निर्णय भी अपनी पर्याय के आश्रय से पर्याय का नहीं होता। पण्डितजी! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! ऐसी अलौकिक बात है।

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! तेरी पर्याय में

'हम केवलज्ञानी हैं' ऐसा निर्णय तुझे आया है? कब निर्णय आयेगा। पर्याय के लक्ष्य से आयेगा? हमारे लक्ष्य से आयेगा? पर्याय तो एक समय की है, उसके आश्रय से उसका निर्णय कैसे हो? यह तो पलटती अवस्था है। है क्रमबद्ध, परन्तु पलटती—बदलती अवस्था है। उसके आश्रय से निर्णय कैसे हो? उसका अर्थ है, यह यहाँ कहते हैं। अकर्तापना, क्रमबद्ध का। निर्णय करता है, उसको अकर्तापने की बुद्धि होती है। अकर्तापने की बुद्धि, वह नास्ति से बात की है। अस्ति से कहो तो ज्ञाता-दृष्टा की बुद्धि होती है। आहाहा! समझ में आया?

यह गाथा जरा समझने जैसी है। निर्जरा अधिकार चलता था, परन्तु यह शिक्षण शिविर है तो थोड़ी मूल चीज तो समझे। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे की रकम यह है, मुद्दे की रकम है। कि यह भगवान आत्मा... सर्वज्ञ परमेश्वर जगत में हैं, ऐसा निर्णय पर के लक्ष्य से नहीं होता, पर्याय के लक्ष्य से नहीं होता। मेरा त्रिकाली सर्वज्ञस्वभाव है... सर्वज्ञशक्ति है न? सर्वज्ञशक्ति—गुण है तो गुण के कारण से दृष्टि उत्पन्न होती है, उससे निर्णय होता है कि मेरा सर्वज्ञस्वभाव है और सर्वज्ञस्वभाव में से सर्वज्ञ की पर्याय जगत में प्रगट होती है। तो ये सर्वज्ञ(पने) का निर्णय हो, यह तो सम्यग्दर्शन हुआ। मैं तो सर्वज्ञस्वरूप ही हूँ। आहाहा! मैं पुण्य-पाप का विकल्प नहीं और एक समय की पर्याय जितना भी मैं नहीं। आहाहा! मैं तो सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु (हूँ)। यह ज्ञान-ज्ञायकस्वरूप ऐसा कहा—छठवीं गाथा में ऐसा कहा। ज्ञायक कहा। '**ण वि होदि अपम्मत्तो ण पम्मत्तो...**' ज्ञायक... ज्ञायक कहो या सर्वज्ञस्वभाव कहो। यह ज्ञायकभाव कहा है। भगवान आत्मा भाववान है और ज्ञायक उसका भाव है। आहाहा! समझ में आया?

यह ज्ञायकभाव जगत में है, मेरे में अस्तित्व है—सत्ता है, पूर्ण प्रभु मैं हूँ। आहाहा! मेरे में ऐसा एक गुण नहीं, परन्तु ऐसे अनन्त गुण परिपूर्ण हैं। परन्तु अनन्त गुण की दृष्टि नहीं (करना)। क्योंकि गुण-गुणी का भेद का लक्ष्य करने से तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! गुण-गुणी के भेद का विचार-निर्णय भी नहीं (करना)। आहाहा! डाह्याभाई! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! मैं एक ज्ञान से तो परिपूर्ण हूँ, आनन्द से परिपूर्ण हूँ, ईश्वरता से परिपूर्ण हूँ, कर्तापने के स्वभाव से परिपूर्ण भी हूँ, वस्तु परिपूर्ण हूँ—ऐसे

अनन्त गुण से मैं परिपूर्ण हूँ। यह परिपूर्ण वस्तु द्रव्य है, वह एकरूप है। (एकरूप वस्तु में) गुण-गुणी भेद नहीं हैं। आहाहा! द्रव्य का जब लक्ष्य, दृष्टि होती है, तब जगत में सर्वज्ञ हैं और उन्होंने देखा ऐसा होगा—ऐसा सच्चा निर्णय समकिती को होता है। आहाहा! भैया! सूक्ष्म बात है, भाई! ये तो वीतरागमार्ग है, भाई!

परमात्मा का विरह पड़ा, परमात्मा तो वहाँ रह गये। आहाहा! सीमन्धर प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। ५०० धनुष (का देह) है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। महाविदेह में कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, उस (बात) को तो दो हजार वर्ष हुए। (परमात्मा) तो वहाँ अरबों वर्ष से हैं और अभी अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! ऐसा करोड़ पूर्व का प्रभु का आयुष्य है। श्वेताम्बर में दूसरी बात है। श्वेताम्बर ८४ लाख पूर्व कहते हैं। वह तो कल्पित बात है। यह तो सन्त अनादि से कहते आये हैं, यह बात है। दिगम्बर मुनि केवली के आढ़तिया... आहाहा!

जीव क्रमबद्ध... इस प्रकार तो गुण सहवर्ती है और पर्याय क्रमवर्ती है—ऐसा पाठ है न? क्रमवर्ती में यह (क्रम)बद्ध नहीं आया। इसलिए यहाँ पाठ में ऐसा लिया है, देखो! **क्रमनियमित** शब्द पड़ा है। क्रम से, परन्तु निश्चय से जो पर्याय (होनेवाली) होगी, वही होगी। क्रम-नियमित। अकेला क्रम नहीं। बड़ी चर्चित है। कोई भी... आचार्य जयसेन की टीका में ऐसा लिखा है कि कोई एक भाव भी यथार्थ समझ में आये, तो सब भाव समझ में आ जाते हैं। ऐसा पाठ है जयसेनाचार्य की टीका में। यह अधिकार मोक्ष अधिकार की चूलिका है। आहाहा! मोक्ष कैसे होता है और मोक्ष होने से पहले सम्यग्दर्शन कैसे होता है? सम्यग्दर्शन, यह मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शन कैसे होता है?

क्रमबद्धपर्याय में... अपनी पर्याय क्रमबद्ध है तो आगे-पीछे तो कर सकते नहीं। पर का तो कर सकते नहीं। अपने आत्मा के अतिरिक्त कोई परमाणु, कोई आत्मा स्त्री का, पुत्र का (हो, उसका) कुछ कर सके, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। मेरी स्त्री है

और मेरा लडका है—ऐसा मानना ही मिथ्या(दर्शन)—भ्रम-अज्ञान है। आहाहा! यह आत्मा भिन्न है, शरीर रजकण भिन्न है। उसमें तेरा कहाँ से आ गया? आहाहा! लक्ष्मी मेरी है (ऐसा मानता है)। लक्ष्मी तो जड़ है, धूल है, अजीव धूल-मिट्टी है। यह अजीव तेरे जीव का कहाँ से आ गया? यहाँ तो इससे आगे जाकर, पुण्य का परिणाम भी मेरा है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। क्योंकि यहाँ क्रमबद्ध में तो पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न अपने सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय करता है, तो पुण्य-पाप का भी अकर्ता हो जाता है।

मैं तो सर्वज्ञस्वभावी ज्ञायक हूँ, तो ज्ञायकभाव राग को करे? (न करे)। क्योंकि आत्मा में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण हैं। (उसके) गुण का पार नहीं है। आकाश के प्रदेश हैं... माप बिना का अलोक... अलोक... अलोक है। उसके प्रदेश (की संख्या) से अनन्तगुने एक जीव में गुण हैं। अनन्त गुण में कोई गुण ऐसा नहीं है कि विकार करे। क्या कहा यह? अनन्त... अनन्त गुण हैं। उसमें विकार करे, ऐसा कोई गुण नहीं है। पर्याय में विकार कैसे होता है? कि पर के लक्ष्य से, पर के वश से विकार होता है। अपना द्रव्य और गुण में विकार होने की ताकत है नहीं। आहाहा! दया-दान के परिणाम करने की भी अपने गुण की ताकत नहीं। गुण तो निर्मल है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण हैं, उसमें विकार करे ऐसा एक भी गुण है नहीं। आहाहा! तो यहाँ कहते हैं कि... मुख्य बात यह कहना है कि... आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। **तावत्...** हमारी मुद्दे की बात यह है कि... समझ में आया?

क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... अपना परिणाम क्रमबद्ध होता है। आहाहा! आगे-पीछे नहीं। वह चर्चा बहुत चली थी वर्णीजी के साथ। वे कहते थे कि भले परिणाम क्रमबद्ध हो (अर्थात्) एक के बाद एक होता है, परन्तु इसके पीछे यही हो... इसके पीछे यह हो—ऐसा नहीं है। यहाँ ऐसा नहीं है। जो (परिणाम) होनेवाला, वह ही होगा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो परमात्मा के गर्भ की बात है। आहाहा! अरे! इसने कभी निर्णय किया नहीं। स्वसन्मुख (और) पर से विमुख। निमित्त से, राग से और पर्याय से भी विमुख और अपने त्रिकाली स्वभाव के सन्मुख होकर

निर्णय करता है, तब क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय होता है। समझ में आया? आहाहा! बहुत कठिन बात। अभ्यास न हो, लोगों को निवृत्ति न मिले, पूरे दिन पाप का धन्धा। दुकान, स्त्री, पुत्र में रुके, पाप... पाप... पाप। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! चार घण्टे शास्त्र वांचन करना और सत्य के लिये सत्समागम मिलना कठिन। ऐसे (अज्ञानी) मिले (और) उल्टा अर्थ समझावे तो मिथ्यात्व पोषण होता है। आहाहा! समझ में आया? उसमें धर्म... धर्म तो अलौकिक चीज़ है। अभी चौबीस घण्टे में से पुण्य का—शुभभाव का चार घण्टे (निकालना), यह भी समय नहीं... समझ में आया? उसमें यह धर्म... आहाहा!

मेरी चीज अनन्त गुण से परिपूर्ण भरी है, उसका जिसे निर्णय हो, उसको क्रमबद्ध का निर्णय होता है। उसको केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा होगा, ऐसा उसको निर्णय होता है। समझ में आया? यह (संवत्) १९७२ के वर्ष में बड़ी चर्चा हुई थी। मैंने तो यह कहा था कि देखो! गजसुकुमार... ऐसी बात सुनी है या नहीं? गजसुकुमार श्री कृष्ण का भाई... यह ७२ की बात है। फाल्गुन मास... फाल्गुन मास। गजसुकुमार... गज अर्थात् हाथी के तलुवा हो, ऐसा कोमल शरीर था। गज-सुकुमार। श्रीकृष्ण के भाई। नेमिनाथ भगवान द्वारिका में आये थे, तब हाथी हौदे पर श्रीकृष्ण ने साथ दर्शन करने जाते थे। दर्शन करने जाते थे, तब गजसुकुमार गोद में बैठे थे। जवान अवस्था। तो उसमें एक सोनी की लड़की थी बहुत रूपवाली थी। सोनी... सोनी... सोने की गेंद से खेलती थी। वहाँ देखी तो श्रीकृष्ण ने कहा, इस कन्या को अन्तेपुर में ले जाओ। इस कन्या का गजसुकुमार के साथ विवाह करायेंगे। गजसुकुमार बैठे थे गोद में। वे बात सुनते थे। कन्या को अन्तेपुर में ले गये। वह दोनों भगवान के पास गये। भगवान के पास सुना और उसी समय गजसुकुमार कहते हैं, प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो मैं तो मुनिपना लेना चाहता हूँ। आहाहा!

अभी उनके भाई कन्या को वहाँ व्यवस्थित रखते हैं, यह खबर है। प्रभु! आपकी आज्ञा हो... भगवान कहाँ आज्ञा दे? वे तो ॐ बोलते हैं, वाणी तो है नहीं। परन्तु जिन्हें विनय करवाने का भाव हो तो ऐसे बोले न। प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो मैं मुनिपना लेना

चाहता हूँ। आहाहा! वह घर गये तब उनके माँ के पास.... वह विवाह की बातें.... आहाहा! माता! मैं मेरा स्वरूप साधन करने को साधकपने साधु (होना चाहता हूँ)। माता! आज्ञा दे। माँ! माता रोने लगी। तो कहते हैं—माता! जनेता! तुझे रोना हो तो रो ले, फिर माता नहीं करूँगा, दूसरी माता अब नहीं करूँगा। अब दूसरा गर्भ... मैं तो मोक्ष जाऊँगा। आज्ञा दे, माँ! मैं इस भव में जाऊँगा। आहाहा! भगवान को पूछे बिना छद्मस्थ को इतना निर्णय हो गया। अरे! भगवान आत्मा में इतनी सामर्थ्य है। वहाँ गये और दीक्षित हुए। दीक्षित हुए... तो कहा,... भगवान ने देखा ऐसा होगा?

ऐसे एक क्षण में मुनि हो गये और मुनि हुए बाद में भगवान के पास आज्ञा ली। प्रभु! मैं तो द्वारिका के श्मशान में बारहवीं प्रतिमा लेकर खड़ा (रहना चाहता हूँ)। दिगम्बर मैं बहुत प्रतिमा नहीं है। सामायिक में बारह प्रतिमा आती है। श्रावक को ११ प्रतिमा है, मुनि को १२ प्रतिमा है। आता है। अपना पाठ है सामायिक में, उसमें सब कुछ है। बारह प्रतिमा है साधु की। १२वीं आखिरी प्रतिमा बहुत जवाबदारीवाली है। प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो द्वारिका के श्मशान में जाकर बारहवीं प्रतिमा ले लूँ और ध्यान में बैठूँ। आहाहा! इतना पुरुषार्थ! और ध्यान में बैठे थे, वहाँ वो सोमल कन्या का पिता आया। अरेरे! कन्या अन्तेपुर में गयी और राजकुमार दीक्षा (ले)? तो कन्या रहेगी क्या? उसको (द्वेष) हो गया। श्मशान में अग्नि थी न। राख लेकर पानी डालकर पाल बाँधी और अग्नि डाली उसमें। अन्दर में उतर गये। आहाहा! और केवलज्ञान प्राप्त किया। कहा, ये वाणी भगवान की कैसी हो कि उन्होंने मुनिपना ले लिया और मुनिपना लेकर संसार से चले गये। गजसुकुमार... हाथी का तलवा होता है ऐसा (सुकोमल) शरीर (वाले) गजसुकुमार। अग्नि... देह छूट गयी और अन्तर में उतरकर केवलज्ञान हो गया। यह वस्तु भगवान की वाणी में कैसे आयी कि पुरुषार्थ करके मुनिपना (ले लिया)?

(संवत्) १९७२ के वर्ष। भगवान ने देखा ऐसा होगा... देखा ऐसा होगा—ऐसा करके एक ओर बैठे रहे वहाँ? आहाहा! भगवान ने देखा ऐसा होगा, तो मैंने भी देखा ऐसा होगा। मेरे ज्ञान में भी जब होता है, उसे देखनेवाला मैं हूँ। आहाहा! वह पर्याय की

दृष्टि छूटकर, पर का लक्ष्य छूटकर जब अन्तर में जाते हैं, तो अपने क्रमबद्ध परिणाम का निर्णय होता है। यह पहली लाईन का अर्थ है। लीटी (लाईन) समझे न?

प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे... क्रमसर... आगे-पीछे की बात नहीं। हुकमचन्दजी का लेख है न? क्रमबद्ध का बहुत आता है। हम तो पहले बहुत पुरुषार्थ करते थे।.... क्रमबद्ध का लेख आता है न। हुकमचन्दजी। आत्मधर्म में बहुत आता है। आहाहा! उसमें तो लोग ऐसा कहते हैं कि क्रमबद्ध होगा, तो पीछे अपने को करना क्या? यह तो (जो होनेवाला है), वह होगा। क्रमबद्ध का निर्णय करने में आत्मा का पुरुषार्थ स्वसन्मुख होता है, यह पुरुषार्थ है। भगवान! तुझे पुरुषार्थ की गति की खबर नहीं। आहाहा! तेरी पर्याय जब जैसी होनेवाली होगी, तुम बदल सकते नहीं और पर से होती नहीं—ऐसा जब निर्णय करने जाते हैं, प्रभु! तो तेरी प्रभुता पर तेरी नजर जायेगी अन्दर। आहाहा! प्रभुता से भरा पड़ा मैं प्रभु हूँ, भगवत्स्वरूप हूँ। भगवत्स्वरूप न हो तो भगवत्स्वरूप की पर्याय कहाँ से आयेगी? समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय जो आती है, भगवत्स्वरूप अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है, वो कहाँ से आया? बाहर से आता है? आहाहा! अन्दर में पड़ा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सत्ता, अनन्त सुखादि अन्दर पड़े हैं। आहाहा! उसकी जब एकाग्रता होती है और उस ओर नजर जाती है, तब अनन्त गुण का एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है।

'सर्व गुणांश समकित।' श्रीमद् का वचन है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में भी ये है। एकदेश ज्ञानादि का प्रगट होना, वह चौथा गुणस्थान है और सर्वदेश प्रगट होना, वह केवली को है। टोडरमलजी। क्या कहते हैं? आत्मा में जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त—जिसका अन्त न हो, इतनी संख्या में गुण हैं, जब अपने स्वभाव सन्मुख हुआ तो जितनी संख्या है, उन सबका एक अंश व्यक्त अर्थात् प्रगट पर्याय में आता है। सम्यग्दर्शन होते ही 'सर्व गुणांश समकित'—जितने गुण हैं, इतने व्यक्त अंश, अल्प अंश व्यक्त—प्रगट होते हैं। अकेला सम्यग्दर्शन ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? अकेला सम्यग्दर्शन क्यों? वास्तव में तो '**भूदत्थो**' में ऐसे कहते हैं कि श्रद्धा को आत्मा में ले जाओ। परन्तु अकेली श्रद्धा आत्मा में आती नहीं, श्रद्धा की मुख्यता से बात की है। समझ में आया? अनन्त गुण की पर्याय इस ओर झुक जाती है।

यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। समझ में आया? सब गुण की पर्याय इस ओर ढल जाती है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। अनन्त... अनन्त गुण की पर्याय जो है, आहाहा! इस ओर झुक जाती है। इस ओर झुक जाती है तो जितनी अनन्त गुण हैं, इतने का एक अंश व्यक्त हो जाता है। आनन्द का अंश, श्रद्धा का अंश, श्रद्धा का अंश अर्थात् समकित, चारित्र का अंश वो स्वरूपाचरण, प्रभुता, ईश्वरता का अंश, वीर्य का अंश। अनन्त... अनन्त गुण की पर्याय की रचना करनेवाला वीर्य का अंश प्रगट होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। मार्ग समझे बिना ऐसे के ऐसे करो व्रत, करो भक्ति और करो पूजा। वह शुभभाव है। बापू! यह तो संसार है। आहाहा! आता है, अशुभ से बचने को ज्ञानी को भी आता है। ऐसा पाठ है 'अशुभ वंचनार्थं'। अस्थान से बचने को आता है, परन्तु है बन्ध का कारण।

भगवानस्वरूप आत्मा... **क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है...** क्रम में परिणाम उत्पन्न होगा, यह जीव ही है। आहाहा! क्रमबद्ध में स्व के आश्रय से जीव का जो (परिणाम) उत्पन्न हुआ यह जीव है, यह अजीव नहीं, अजीव से उत्पन्न हुआ नहीं, यह परिणाम की उत्पत्ति में पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। **जीव ही है...** भाषा है? **जीव ही है...** संस्कृत में है, **जीव एव... जीव एव...** परिणाम को **जीव एव...** कहा। आहाहा! क्या कहा? अपने भगवान आत्मा में समय-समय में जो क्रमबद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, ऐसा निर्णय अपने ज्ञायक द्रव्य पर (दृष्टि करने) से हुआ, तो जो परिणाम उत्पन्न हुआ वह अनन्त परिणाम व्यक्त हुआ। यह परिणाम जीव ही है। नहीं तो है तो पर्याय। **जीव ही है...** ऐसा कहा। है संस्कृत मैं? **जीव एव...** उस परिणाम को हम जीव कहते हैं। परन्तु यह परिणाम क्या है? द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होकर निर्मल परिणाम होता है, उस परिणाम को यहाँ जीव कहा है। समझ में आया?

रागादि होता है, परन्तु राग का ज्ञान करते हैं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात हो (तो) पकड़ा नहीं, वापस लोग (कहे), एकान्त है... एकान्त है... सोनगढ़ ऐसा कहते हैं।— (ऐसा) पुकार करते हैं। करो भाई! भगवान! तेरी चीज़ तो ऐसी है। प्रियंकरजी! आहाहा!

जीव ही है... अपना परिणमन उत्पन्न हुआ, जीवद्रव्य के आश्रय से जो क्रमबद्ध परिणाम उत्पन्न हुआ, (वह) जीव ही है। द्रव्य का परिणाम द्रव्य ही है। आहाहा! समझ में आया? आहा! और **अजीव नहीं...** नास्ति से कहा, यह अनेकान्त। अनेकान्त यह नहीं कि अपना परिणाम अपने से भी है और पर से भी है, यह अनेकान्त नहीं, यह तो एकान्त मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

अपना परिणाम अपने से भी है और पर से भी है, यह अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं लोग। ऐसा है नहीं। अपना परिणाम अपने से ही है, अजीव नहीं। कर्म से नहीं हुआ, कर्म का क्षयोपशम हुआ तो जीव का परिणाम जीव के आश्रय से हुआ—ऐसा है नहीं। कर्म का क्षयोपशम हुआ तो यह परिणाम हुआ, ऐसी बात है नहीं। अपने परिणाम में कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग अब सुनना कठिन पड़े। आहाहा! यह तो वीतरागदेव त्रिलोकनाथ और वह भी दिगम्बर धर्म में ऐसी बात है। श्वेताम्बर में यह बात चलती नहीं। स्थानकवासी, श्वेताम्बर में ऐसी (बात) है नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो श्वेताम्बर, स्थानकवासी को अन्यमत में डाला है, अन्यमत में। यह पक्ष (की बात) नहीं, प्रभु! यह वस्तु का स्वरूप है। यह चीज़ तो... आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड जो है, (ऐसे) जब पर्याय क्रमबद्ध का निर्णय करने जाती है अपना स्वभाव-सन्मुख होकर जो परिणाम उत्पन्न हुआ यह परिणाम जीव ही है। जीव के परिणाम जीव ही है, अजीव के परिणाम अजीव ही है। ऐसा कहकर क्या कहा? अन्दर कर्म का उदय आया, यह (कर्म) मन्द पड़ गया और पीछे हट गया (और) सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई—ऐसा है नहीं। अपनी सम्यग्दर्शन की पर्याय होने में कर्म का क्षयोपशम है तो हुआ—ऐसी अपेक्षा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! कब निर्णय करे? निवृत्ति न मिले, धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं। हम तो दुकान पर यह वाँचते थे। (संवत्) ६४-६५ के वर्ष। ६४-६५। पिताजी गुजर गये,... दुकान चलायी... पर हम तो निवृत्ति लेते थे। भागीदार बैठे हो गद्दी पर तो हम अन्दर शास्त्र वाँचते थे। वह न हो तब गद्दी पर बैठना पड़े। ६३ से ६८। आहाहा!

इसी प्रकार... अनेकान्त किया कि जो अपना—जीव का परिणाम है, वह जीव

ही है, अजीव नहीं अर्थात् अजीव से उत्पन्न हुआ नहीं अर्थात् कर्म का क्षयोपशम है तो जीव का परिणाम सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसी अपेक्षा है नहीं। क्योंकि... चर्चा बड़ी थी ईसरी में। पंचास्तिकाय की ६२ गाथा में ऐसा लिया है कि आत्मा में जो पुण्य-पाप का, दया-दान का, काम-क्रोध का विकार होता है, वह षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होता है। ६२ गाथा पंचास्तिकाय। (संवत्) २०१३ के वर्ष। २२ वर्ष पहले इसरी गये थे न? सम्मेदशिखर यात्रा। तब बड़ी चर्चा हुई थी। यह परिणाम जो होता है, वह अपने से है, पर से नहीं, कर्म से नहीं। कर्म से विकार न हो तो स्वभाव हो जाये—ऐसा प्रश्न किया सामनेवाले ने। यह स्वभाव ही है पर्याय का। आ गया है। ७२ गाथा है न? उसमें भी है। वास्तव में स्वभाव है। वह पर्याय में ... पर्याय होना, वह भी पर्याय का स्वभाव है। पर्याय का है, गुण का नहीं, द्रव्य का नहीं। आहाहा! यह पर्याय में विकार होने में पर की अपेक्षा बिल्कुल है नहीं। कर्म के कारक की अपेक्षा नहीं, ऐसा पाठ है। ६२ गाथा। विकार होने में कर्म के कारक की अपेक्षा नहीं। तो फिर धर्म की पर्याय में कोई पर की अपेक्षा है—(ऐसा है नहीं)। आहाहा!

निश्चय से तो ऐसा है कि जब जीवद्रव्य का अवलम्बन लेता है, तब वह पर्याय षट्कारक से परिणमती है। सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारक से परिणमती है। उसका अर्थ क्या है? कि पर्याय का कर्ता पर्याय है; पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। आहाहा! सूक्ष्म है थोड़ा। कर्म कहना, फिर भी पर की अपेक्षा नहीं। सम्यग्दर्शन परिणाम (स्वयं) का कर्ता है, यह षट्कारक से परिणमित हुआ है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—षट्कारक से समकित की पर्याय उत्पन्न होती है। परन्तु कर्ता में उसका लक्ष्य स्वद्रव्य पर जाता है। यह स्वतन्त्र कर्ता होकर स्व पर लक्ष्य जाता है। क्या कहा? आहाहा! ऐसा कि स्व का लक्ष्य आया तो इतनी पराधीनता—अपेक्षा हुई या नहीं? कि नहीं। यह सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारक से उत्पन्न होती है, उसमें पर की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु द्रव्य-गुण की भी नहीं। समझ में आया?

यह द्रव्य-गुण की (अपेक्षा) नहीं, पर्याय है तो (कोई) कर्ता तो है? किसका कर्ता? कि अपनी पर्याय का। अपनी पर्याय का कर्ता है, वह स्वतन्त्रपने स्व के लक्ष्य में

जाता है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान की धर्म की परिणति—पर्याय कर्ता होकर स्वतन्त्र होती है और कर्ता होकर स्व पर लक्ष्य जाता है... कर्ता होकर स्व पर लक्ष्य जाता है। आहाहा! ऐसा कि स्व का आश्रय करे तो (इतनी) पर्याय की पराधीनता है—ऐसा है नहीं। कहने में आता है '**भूदत्थं मस्सिदो खलु समाहिती हवदि जीवो...**' (समयसार) ११वीं गाथा। भगवान पूर्णानन्द का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? तथापि यहाँ कहते हैं कि आश्रय करने में भी यह पर्याय स्वतन्त्र होकर आश्रय करती है। आहाहा! (स्व) पर लक्ष्य गया, इसलिए पर्याय पराधीन हुई—ऐसा है नहीं। आहाहा! अब ऐसी बात बैठना कठिन जगत को। यह तीन लोक के नाथ वीतराग परमात्मा की दिव्यध्वनि—ओमकार ध्वनि है। 'ओमकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे...' और आगम रचे। 'रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **जीव ही है, अजीव नहीं...** यह अनेकान्त है। जीव का परिणाम अपने से भी होता है और पर से भी होता है (—ऐसा नहीं)। आता है तत्त्वार्थराजवार्तिक में (कि) दो कारण से कार्य है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में है। उपादान और निमित्त... निमित्त है, उसका ज्ञान कराया। निमित्त से होता नहीं, परन्तु निमित्त है, उसका ज्ञान कराया। दो कारण से कार्य, ऐसा पाठ है। यहाँ तो एक ही कारण कहा। आहाहा! अकलंकदेव भी कहते हैं कि दो कारण से कार्य है अथवा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा आया है, पूर्व पर्याय युक्तं द्रव्य उपादानं... पूर्व पर्याय युक्तं द्रव्य उपादानं... उत्तर पर्याय युक्त द्रव्य उपादेय। उपादान कारण है और उपादेय कार्य है। पहली पर्याय उपादान कारण है और पीछे की पर्याय (कार्य है)—यह सद्भूत व्यवहारनय से कथन है, निश्चय से नहीं। आहाहा! निश्चय से तो यह (वर्तमान) पर्याय पूर्व की पर्याय से भी उत्पन्न हुई नहीं। पूर्व की पर्याय का तो व्यय होकर उत्पन्न होती है, तो उत्पन्न होने में आश्रय तो त्रिकाली द्रव्य का है। आहाहा! कठिन बात है।

नियमसार में पाठ है कि अज्ञानी को '**सततं सुलभं**'... यह सामग्री मिलती है 'सततं सुलभं'—सहज में मिलती है, ऐसे सुलभ है। ज्ञानी को आत्मा मिलता है 'सततं

सुलभं'। (कलश १७६)। दो पाठ हैं नियमसार में। आलोचना अधिकार के अन्त में है और पहले अधिकार में है। मिथ्यादृष्टि को ये बाह्य सामग्री सुलभ है। (कलश ३०)। लक्ष्य करता है कि मुझे पैसा मिला, शरीर मिला। धूल भी मिलती नहीं, यह तो पूर्व के पुण्य से मिलती है। एक ओर भगवान, मुनि ऐसा भी कहे कि मिथ्यादृष्टि को सामग्री मिलनी दुर्लभ है—ऐसा कहे। क्यों? उसके पुरुषार्थ के आधीन नहीं, पूर्व के पुण्य के आधीन है, इसलिए दुर्लभ कह दिया। एक ओर सुलभ कहा। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जीव का परिणाम जीव का है, अजीव से नहीं, कर्म से नहीं अथवा देव-गुरु-शास्त्र से भी नहीं। अपने द्रव्य के अवलम्बन से अपना परिणाम जो हुआ है, यह परिणाम देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से भी नहीं। आहाहा! अजीव से नहीं अर्थात् इस जीव से (भिन्न) दूसरे सब जीव। यहाँ तो अजीव में कर्म लिया, नहीं तो ये जीव, जीव है और इसकी अपेक्षा से दूसरे सब जीव अजीव हैं। आहाहा! समझ में आया? ये द्रव्य, द्रव्य है, इसकी अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु का एक-एक बोल समझना, आहाहा! यह अलौकिक बातें हैं। यह समझ में आ गया तो भव का अन्त आ गया। आहाहा! उसको भव नहीं। यहाँ कहते हैं, **अजीव नहीं...**

इसी प्रकार अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से... भाषा देखो! शरीर में भी पर्याय क्रमबद्ध होती है, आत्मा से नहीं। ऐसे हिलता है, यह क्रमबद्ध होने की योग्यता से हुआ है। समझ में आया? पहले ऐसा था, अब ऐसा हुआ। यह अजीव की पर्याय क्रमबद्ध से होनेवाली हुई है, आत्मा की इच्छा से नहीं, आत्मा से नहीं। आहाहा! **अजीव भी...** 'अजीव भी' क्यों कहा? कि पहले जीव की बात की थी न? इसलिए अजीव भी, ऐसा। क्रमबद्ध... उसमें भी क्रमबद्ध है। आहाहा! यह मकान होने की परमाणु की पर्याय क्रमबद्ध में हुई है। आहाहा! मन्दिर बनता है तो परमाणु की पर्याय क्रमबद्ध में होनेवाली है, उससे बनता है। कारीगर (और) प्रमुख उसका बनानेवाला नहीं है। आहाहा! गजब सूक्ष्म बातें हैं।

अजीव भी क्रमबद्ध... सबमें क्रमबद्ध है न? आहाहा! यह भाषा निकलती है वह भी क्रमबद्ध पर्याय से भाषा आती है, आत्मा से नहीं। आहाहा! आत्मा बोलता नहीं और बोलती भाषा की पर्याय का आत्मा कर्ता नहीं। आहाहा! **अजीव भी क्रमबद्ध...** आहाहा! शरीर, वाणी, मन, (आदि) बाह्य पुद्गल (और) आत्मा के अतिरिक्त सब अजीव उनके परिणाम क्रमबद्ध—क्रम से होनेवाले हैं और क्रम से होते हैं। आहाहा! कोई कहे कि परमाणु को सुधार दूँ... समझ में आया? आहाहा! कच्ची सब्जी में से पक्की सब्जी होती है, यह अग्नि से नहीं। क्रमबद्ध में आनेवाली पर्याय से अजीव का परिणाम हुआ है और अजीव का परिणाम, यह अजीव है। तवे से और स्त्री से रोटी हुई, सब्जी पक्की हुई—ऐसा है नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)